मारवाड़ी समाज

डॉ डी के टकनेत

1990

प्रकाशक
©
कुमार प्रकाशन, जयपुर

मारवाड़ी समाज
डॉ डी के टकनेत
ईमेलः iime.jaipur@gmail.com

ISBN 81-85351-00-0

प्रथम संस्करण : फरवरी, 1989
द्वितीय संस्क्रण : जनवरी, 1990

मूल्य : रू० 1,500.00

मुद्रक :
आदित्य आफसैट, दरियागंज, दिल्ली

आवरण एवं रंगीन फोटो :
बेरी आर्ट प्रैस मायापुरी, नई दिल्ली

आवरण एवं सज्जा :
विनोद भारद्वाज
जयपुर

MARWARI SAMAJ BY DR D K TAKNET

प्रस्तावना

भारतीय समाज विभिन्न धर्म, भाषा, जाति और संस्कृतियों से सम्पन्न है। संस्कृति के विभिन्न रूप हमारी राष्ट्रीय संस्कृति की शक्तियाँ हैं। राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र की भी अपनी संस्कृति है, जो हमारी राष्ट्रीय संस्कृति में एक नया रंग जोड़ती है।

मारवाड़ क्षेत्र की कठिन प्राकृतिक स्थितियों ने यहाँ के लोगों को स्वभावतः उद्यमी और संघषशील बना दिया है। अपनी गतिशील प्रवृत्ति के कारण यहाँ के लोग सारे देश में फैले तथा अपने परिश्रम से इन्होंने सफलताएँ अर्जित कीं। ऐतिहासिक काल से लेकर आज तक यहाँ के लोगों ने भारत के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। यह वर्ग राष्ट्र प्रेम की भावना से ओतप्रोत रहा है। स्वतंत्रता आंदोलन में भी इस वर्ग की सक्रिय भागीदारी रही। श्री घनश्यामदास बिड़ला अपने आर्थिक शक्ति जैसे रहे। श्री जमनालाल बजाज अपने त्याग, सेवा और सहयोग की भावना से गाँधी जी का पाँचवा पुत्र होने के पात्र बने।

मारवाड़ियों के चरित्र की अनुकरणीय बात है और उनकी सादगी और धार्मिक चेतना। सादगी के कारण इनके पास धन का संग्रह हुआ तथा धार्मिक चेतना के कारनण इन्होंने उस धन का उपयोग कुएँ खुदवाने तथा धर्मशाला, स्कूल और अस्पताल आदि बनवाने में किया। इस प्रकार राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में भी अप्रत्यक्ष रूप से इनका काफी योगदान रहा है। आज यह वर्ग व्यवसाय के अतिरिक्त प्रशासन, इंजीनियरिंग, चिकित्सा, अनुसंधान, शिक्षा, संस्कृति आदि क्षेत्रों में भी सक्रिय है, और इन क्षेत्रों में इसने अच्छी सफलताएँ हासिल हैं।

हमारे राष्ट्र में जितने भी समाज हैं, उनका गहराई और विस्तार से अध्ययन किया जाना चाहिए, ताकि उनकी सांस्कृतिक विरासत के समृद्ध तत्वों को आने वाली पीढ़ी के सामने रखा जा सके। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि डॉ० डी० के० टकनेत ने मारवाड़ी समाज के अतीत और वर्तमान को इस पुस्तक में प्रमाणिक रूप से प्रस्तुत करने की कोशिश की है। उनके इस लेखन में शोध की दीप्ति दिखाई पड़ती है। इसके लिये वे बधाई के पात्र हैं। मुझे विश्वास है कि भविष्य में इस तरह के और भी कार्य होंगे।

(शंकर दयाल शर्मा)
उपराष्ट्रपति
भारत सरकार
नयी दिल्ली–110011

समर्पण

श्रद्धा सुमन के रूप में अर्पित है

उन मारवाड़ी व्यापारियों को जो

निष्क्रमण के प्रथम चरण में जीवन–संघर्ष के दौरान

काल मृत्यु को प्राप्त हुए।

नमन् है उन गुमनाम मारवाड़ी

स्वतंत्रता सेनानियों को जिन्होंने देश की

आजादी के लिए प्राणोत्सर्ग किए।

अभिनन्दन है उन मारवाड़ी उद्यमियों का

जिन्होंने देश की अर्थव्यवस्था का

कायाकल्प की कर डाला।

प्राक्कथन

आधुनिक भारत के आर्थिक एवं सामाजिक उत्थान में व्यापारिक जातियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। लेकिन विगत कई वर्षों से आर्थिक इतिहास की अनदेखी के कारण उनके समुचित योगदान का आंकलन नहीं हो पाया। जैसे–जैसे पाश्चात्य राष्ट्रों में आर्थिक इतिहास लेखन को महत्त्व मिला वैसे–वैसे भारत में भी व्यापारिक जातियों के इतिहास की ओर ध्यान दिया जाने लगा। राजपूताना व उसके आसपास के क्षेत्रों से निष्क्रमण कर सम्पूर्ण राष्ट्र में फैले मारवाड़ी व्यापारियों के आर्थिक इतिहास पर कुछ विद्वानों ने कलम उठाई लेकिन उनका ध्यान मारवाड़ियों की व्यावसायिक कौशल से अर्जित धन का उपयोग जनकल्याणकारी प्रवृत्तियों के अलावा देश की आजादी के लिए भी किया। उन्होंने एक तरफ स्वतंत्रता आंदोलन को आर्थिक सम्बल प्रदान किया तो दूसरी ओर आजादी में सक्रिय भाग लेकर अपनी कुर्बानियाँ दीं। समाज के आर्थिक पहलू को अधिक महत्ता दिए जाने के कारण मारवाड़ियों का राजनैतिक इतिहास सदैव धूमिल रहा। इस शोध अध्ययन द्वारा मारवाड़ी समाज के इतिहास के संबंध में समन्वित दृष्टिकोण अपनाकर इस कमी को पूर्ण करने का प्रयास किया गया है।

इस पुस्तक में मारवाड़ियों की व्यापार से उद्योग तक की यात्रा को सम्यक तरीके से उल्लेखित किया साथ ही उनके निष्क्रमण एवं उस दौरान किए गए संघर्ष की विवेचना भी की गई है। आजादी से पहले के व्यापार के ऐतिहासिक मूल्यांकन से मारवाड़ियों के आर्थिक प्रभुत्व का स्पष्ट अहसास होता है। बैंकिंग में तो वे अन्य व्यावसायिक जातियों से काफी अग्रणी थे। उनकी हुंडियों की देश भर में साख थी। कालान्तर में वे व्यापारी से अंग्रेजी के व्यापारिक एकाधिकार को चुनौति देते हुए ब्रिटिश कम्पनियों का स्वामित्व ग्रहण कर लिया। आजादी के बाद तो मारवाड़ी उद्यमियों ने तीव्र गति से प्रगति की तथा देश के निजी क्षेत्र के सर्वेसर्वा हो गए। बात चाहे घरेलू उत्पाद की हो या नवीनतम तकनोलोजी की हर कहीं मारवाड़ी अग्रणी हैं। आज इनकी औद्योगिक साहसिकता भारत के आर्थिक इतिहास में नए कीर्तिमान स्थापित करते हुए विश्व–विख्यात् हो चुकी है। मारवाड़ी व्यापारियों को इस सहज किन्तु आश्चर्यजनक प्रगति के कारणों का चतुर्थ अध्याय में विशद् विश्लेषण किया गया है।

पहली बार इस पुस्तक के पांचवे अध्याय में मारवाड़ियों द्वारा स्वतंत्रता आंदोलन में दिए गए योगदान का ऐतिहासिक विवेचन किया गया है। जन साधारण की मान्यता है कि मारवाड़ी केवल व्यापार एवं उद्योग तक ही सीमित रहे हैं लेकिन वास्तविकता यह है कि उन्होंने अनेक युद्धों में वीरता दिखाई तथा अपनी राजनैतिक प्रतिभा के बल पर कई महत्त्वपूर्ण पद संभाले। देश की आजादी के लिए मारवाड़ियों ने 1857 की क्रांति से लेकर 1947 के गदर में धन और तलवार दोनों से क्रांतिकारियों की मदद की जिसके कारण कई मारवाड़ी फांसी पर लटका दिए गए। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान बड़ी संख्या में मारवाड़ियों ने गांधीजी के नेतृत्व में रचनत्मक भूमिका निभाई तथा कई मारवाड़ी नवयुवकों ने उग्र राजनीति का सहारा लेकर आजादी के लिए फांसी के फंदे को चूम लिया। यही नहीं, बल्कि मारवाड़ियों ने देशी रियासतों के भारत में विलयीकरण के लिए भी ठोस प्रयास किए। यद्यपि मारवाड़ी

व्यापारियों की राजनैतिक प्रतिभा को महात्मा गांधी ने स्वीकार किया लेकिन इतिहासकारों की अनदेखी के कारण आजादी में उनके योगदान को केवल अर्थ प्रधान बतलाकर उसकी महत्ता को नकार दिया गया।

इस शोध अध्ययन का आधार प्राथमिक तथा द्वैतियक सामग्री रही है। कई प्रसिद्ध मारवाड़ी उद्यमियों, उनके प्रबंधकों तथा पुराने सेठ एवं मुनीमों से साक्षात्कार कर मौलिक सामग्री संकलित की गई। पुरानी बहियाँ, परवाने व अन्य कई व्यापारिक कागजात मददगार साबित हुए। मारवाड़ी–व्यापारियों की व्यक्तिगत डायरियों, जीवनियों, अभिनन्दन ग्रन्थों तथा उनके व्यक्तिगत संस्मरणों का सहारा लिया गया। इसके साथ ही ब्रिटिश गजेटियर, सेंसस रिपोर्ट आदि से भी काफी सहायता मिली। मारवाड़ियों के तत्कालीन दैनिक पत्र एवं पत्रिकाएँ उनके सामाजिक एवं व्यापारिक पक्ष को समझने का सशक्त माध्यम बनीं। पुरानी मारवाड़ी फर्मों के विश्लेषण से उनके व्यवसाय तथा मूल स्थानों के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिली।

यह पुस्तक चार वर्षों के परिश्रम का परिणाम है जिसमें बहुत कुछ नया है जिसे पहली बार प्रामाणिक रूप में लिखा गया है। मैं आभारी हूँ शंकरदयाल जी शर्मा, उपराष्ट्रपति, भारत सरकार का जिन्होंने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने का कष्ट किया। मैं उन सभी मारवाड़ी उद्यमियों का आभारी हूँ जिन्होंने अपने पारिवारिक इतिहास एवं मारवाड़ी समाज के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण जानकारी दी। उनमें विशेषतौर से गंगाप्रसाद बिड़ला, रामकृष्ण बजाज, संतोष बगड़ोदिया, सरला बिड़ला, अश्विनी कुमार कानोड़िया, डी एन पाटोदिया, हरिशंकर सिंहानिया, नन्दलाल कानोड़िया, आर पी मोदी, सुदर्शन कुमार बिड़ला, प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, राहुल बजाज, के एल जालान, हर्ष गोयनका, संजय डालमिया, राजेश खेतान, सीताराम जीवनराजका, गौरीशंकर कनोई, पवनकुमार बागला, पुरूषोत्तम रुंगटा, रघु मोदी, बी डी० बांगड़, नन्दलाल टांटिया, मोहनलाल साबू, दुर्गाप्रसाद मंडेलिया, रामप्रसाद पोदार एवं किशन रुंगट का कृतज्ञ हूँ। पुस्तक लिखने के दौरान प्रो आर बी उपाध्याय, प्रो ए एम खुसरो, राजेन्द्र शंकर भट्ट, आनन्दीलाल रुंगटा, मेजर वेदप्रकाश राजवंशी, बजरंगलाल जाजू, रतनशाह, प्रमोद सराफ, अरुण बजाज, अनिल जैन, काशीप्रसाद खेरिया, सुशीला केजरीवाल, चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय, विनोद भारद्वाज, लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला, परमानन्द चुड़ीवाल, गोविन्द अग्रवाल, ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ, ब्रजनारायण अग्रवाल, कु महेन्द्र सिंह, अजित सिंह, श्री प्रकाश शर्मा, डा टामस ए टिम्बर्ग, ज्यों लुई व सुजाता गुप्ता के साथ किए गए विचार–विमर्श काफी लाभदायक रहे जिसके लिए मैं उनका आभार प्रकट करता हूँ। आशा है इस पुस्तक से मारवाड़ी समाज का इतिहास और अधिक स्पष्ट होगा जो भविष्य में शोधकत्ताओं को नई दिशाओं में खोज के लिए प्रेरित करेगा।

डॉ डी के टकनेत

जयपुर

विषय–सूची

प्रस्तावना	पाँच
प्राक्कथन	नौ
तालिकाएँ	पन्द्रह
मानचित्र	पन्द्रह
रंगीन चित्र	166
श्याम चित्र	235
1. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	**1**
2. आजादी से पहले के मारवाड़ी व्यापारी	**31**
3. स्वतन्त्रता के बाद की द्रुत प्रगति	**71**
4. व्यावसायिक सफलता के कारण	**141**
5. स्वतन्त्रता आंदोलन में योगदान	**183**
6. उपसंहार : अतीत, वर्तमान और भविष्य	**220**
परिशिष्ट– 1	242
परिशिष्ट– 2	249
परिशिष्ट– 3	258
परिशिष्ट– 4	262
संदर्भ ग्रंथ सूची	268
नामानुक्रमणिका	275

तालिकाएँ

1. विभिन्न समुदायों में कम्पनियों के वितरण का प्रतिशत 61
2. अर्थव्यवस्था पर विभिन्न समुदायों का नियंत्रण 73
3. समुदायों की विनियोजित सम्पत्ति 74
4. मारवाड़ी औद्योगिक धरानों की प्रदत्त पूंजी, संपत्ति और बिक्री 76
5. बड़े मारवाड़ी औद्योगिक घरानों की सम्पत्ति 77
6. बड़े मारवाड़ी उद्यमियों की वृहदाकार (टॉप जायंट) कंपनियाँ और उनके अध्यक्ष 78
7. मारवाड़ी उद्यमियों की लघु आकार (मिनी जायंट) कंपनियाँ और उनके अध्यक्ष 82
8. बिड़ला उद्योग समूह की प्रमुख कम्पनियाँ 90
9. विदेशों में बिड़ला उद्योग 92
10. सिंहानिया उद्योग समूह की प्रमुख कम्पनियाँ 118
11. बजाज उद्योग समूह की प्रमुख कम्पनियाँ 128

मानचित्र

1. राजस्थान (राजपूताना) 2
2. उन्नीसवीं सदी में राजपूताना के व्यापारिक मार्ग 7
3. भारत 1857 16
4. मारवाड़ियों के मूल स्थान 33

1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत के औद्योगिक विकास की यात्रा में यहां की व्यावसायिक जातियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। अंग्रेजों के आगमन से पहले व्यवसाय का संचालन तथा नियंत्रण इन्हीं के हाथों में था। इसके कारण साधनों का ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन हो गया था। इसके कारण साधनों का विदोहन हाने की बजाय शोषण होने लगा था। पटसन, चाय तथा अन्य कई उद्योगों पर अंग्रेजों ने एकाधिकार कर लिया था। इसे सर्वप्रथम मारवाड़ी व्यापारियों ने चुनौती दी तथा अंग्रेजों के इस व्यापारिक शिकंजे को तोड़ डाला। यह सम्पूर्ण घटनाक्रम काफी संघर्षपूर्ण था जिसमें कई अन्य व्यावसायिक जातियों ने भी योग दिया। शुरू में विपरीत परिस्थितियों के कारण मारवाड़ी व्यापारियों को अपने मूल कार्यों से हटकर अंग्रेजों का बेनियन बेनियन बनना पड़ा। लेकिन कालान्तर में वे अपने व्यावसायिक चातुर्य तथा परिश्रम के बलबूते पर इन्हीं प्रतिष्ठानों के स्वामी विनियोजन के कारण मारवाड़ी जाति अग्रणी हो गई। स्वतंत्रता के बाद तो मारवाड़ियों ने अन्य भारतीय व्यावसायिक जातियों को भी पीछे छोड़ दिया। आज राष्ट्र के अधिकांश औद्योगिक प्रतिष्ठान तथा औद्योगिक घराने इसी समुदाय के हैं जो भारत की सीमाओं को लांघकर अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रवेश कर चुके हैं। इनके द्वारा कई ऐसे उत्पाद प्रस्तुत किये गए हैं जो विश्व में पहली बार प्रचलित हुए हैं। इस शोध कार्य में हम प्रवासी मारवाड़ी व्यापारियों के विकास का क्रमबद्ध अध्ययन करेंगे।

मारवाड़ी शब्द की निरूक्ति

इस शब्द की निरूक्ति के बारे में कई मत हैं। इसका मुख्य आधार मारवाड़ रहा है। मारवाड़ शब्द संस्कृत के 'मरूवाट' का अपभ्रंश है। प्राचीनकाल में यह मरूप्रदेश कहलाता था। बालचन्द मोदी का कहना है कि 'माड़' जैसलमेर का दूसरा नाम था और 'वाड़' मेवाड़ का अंतिम अंश। इस तरह 'माड़वाड़' शब्द बना। इस प्रकार जैसलमेर और मेवाड़ को इस शब्द की व्युत्पत्ति का आधार माना जाता है।[1] कालान्तर में यह शब्द सम्पूर्ण राजस्थान का द्योतक न होकर मात्र जोधपुर तक सीमित हो गया तथा जोधपुर का इलाका ही मारवाड़ के नाम से अधिक विख्यात हुआ।[2] इस शब्द को जोधपुर के महाराजा ने तो और अधिक संकुचित बना दिया तथा इसकी व्याख्या करते हुए कहा कि जो पुरूष तीस वर्ष मारवाड़ में रह चुका है या जिसके पास जायदाद मारवाड़ में है वही मारवाड़ी कहा जाएगा।[3] इस तरह लम्बे अर्से तक जोधपुर के लिए प्रयुक्त होने के कारण इस शब्द ने अपनी व्यापकता खो दी।

यद्यपि मारवाड़ी व्यापारी पन्द्रहवीं शताब्दी से पूर्व से ही राजपूताना से प्रवसित होते रहे हैं लेकिन ऐतिहासिक सूत्रों से विदित होता है कि मारवाड़ी व्यापारी बंगाल में 1564 में प्रवासित हुए थे। उस समय सुलेमान किरानी बंगाल का शासक था जो घरेलू झगड़ों से परेशान रहता था। इस कारण उसने सम्राट अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी। उसकी सहायता के लिए अकबर ने राजा मानसिंह के नेतृत्व में जो राजपूताना सेना भेजी थी उसके मोदीखाने का काम मारवाड़ (जोधपुर) के वैश्य देखते थे। उनका कार्य सेना को खाद्य पदार्थ तथा लड़ाई के साजो–सामान उपलब्ध करवाना था। मारवाड़ में अर्जित व्यावसायिक कौशल के कारण उन्होंने वहां अपना व्यवसाय बढ़ाया तथा अपनी मदद के लिए राजपूताना राजपूताना से अपने सजातीय भाइयों को बंगाल आने को आमंत्रित किया। बंगाल के स्थानीय लोगों से व्यवसाय होने पर वे अपना परिचय मारवाड़ के आधार पर मारवाड़ी कह कर देने लगे। तभी से राजपूताना या उत्तर भारत से जो भी व्यवसायी बंगाल गए उनकी पहचान मारवाड़ी के रूप में की जाने लगी।

मारवाड़ी शब्द की व्यापक परिभाषा

अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन कलकत्ता ने मारवाड़ी शब्द के दायरे को और अधिक विस्तृत किया तथा अपने संविधान में स्वीकार किया कि राजस्थान, हरियाणा मालवा तथा उसके निकटवर्ती भू–भागों के रहन–सहन, भाषा तथा संस्कृति वाले सभी लोग जो स्वयं अथवा उनके पूर्वज देश या विदेश के किसी भू–भाग में बसे हों, मारवाड़ी हैं।[4] इस तरह मारवाड़ी समाज में राजस्थान से बाहर के लोगों को भी उनकी सांस्कृतिक समानताओं तथा विशेषताओं के कारण शामिल करके इस शब्द को व्यापकता प्रदान की। प्रारंभ में मारवाड़ी शब्द का प्रयोग मात्र व्यवसायी वर्ग के लिए होता था लेकिन धीरे–धीरे उदारवादी विचारों के प्रभाव से इसमें राजस्थान और आसपास के अन्य क्षेत्रों की उन सभी जातियों को सम्मिलित कर लिया गया जो राजस्थान की परम्परागत संस्कृति से जुड़ी हुई हैं। यदि इसे अधिक खुलासा करें, तो मारवाड़ी के अन्तर्गत केवल अग्रवाल, माहेश्वरी, ओसवाल, खण्डेलवाल और सरावगी ही नहीं, बल्कि, ब्राह्मण, राजपूत, जाट, माली, मुसलमान, हरिजन तथा वे तमाम जातियां हैं जो राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत को अपने में समेटे हुए हैं। मारवाड़ी शब्द केवल व्यापारियों तथा उद्योगपतियों का ही वाचक नहीं है, बल्कि उसमें नौकरी पेशा लोग और मजदूर भी शामिल हैं।

केवल भूगोल, भाषा, तथा सांस्कृतिक परम्परा के आधार पर परिभाषित करने से मारवाड़ी शब्द की महत्वपूर्ण पहचान विलुप्त हो गई। कुछ विद्वानों ने तो मारवाड़ी शब्द को कर्म के आधार पर परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। बालचन्द मोदी[5] का कथन है कि यह शब्द किसी प्रकार की सांस्कृतिक साम्प्रदायिकता को प्रकट नहीं करता बल्कि सम्पूर्ण राजस्थान प्रान्त के लिए गौरव का विषय है। प्रमोद सराफ[6] की मान्यता है कि मारवाड़ी से तात्पर्य ऐसे जनसमुदाय से है जो दूरदराज के अपरिचित एवं दुर्गम भाग को अपना कार्यक्षेत्र बनाने का असीम साहस रखता हो। तथा इसके विकास के लिए आवश्यक साधनों के अभाव पर शोकाकुल होकर बैठने की बजाय उनको जुटाने के लिए सतत गतिशील रहता हो। जो प्राकृतिक आपदाओं एवं सार्वजनिक संकट के समय बैचेन हो, स्वयं या स्वअर्जित साधनों को जनहित संकट निवारण हेतु अर्पित कर आत्मसंतोष की अनुभूति करता हो। प्रो आर. बी. उपाध्याय[7] मारवाड़ी शब्द को साहसिकता का पर्याय बताते हुए स्पष्ट करते हैं कि जो परिश्रमी, मितव्ययी तथा साधनों का अधिकतम उपयोग करने वाला हो वही सही मायने में मारवाड़ी है। वनमाली गुप्ता[6] के अनुसार मारवाड़ी शब्द की अपनी सांस्कृतिक मर्यादा और महत्व है जो आज राष्ट्र के प्रत्येक भाग को समृद्ध बना रहा है। इस शब्द से साम्प्रदायिकता का नहीं, बल्कि क्षमता तथा प्रतिभा का बोध होता है। यह शब्द प्रेरणापुंज है, उन लाखों राजस्थानियों का, जिन्होंने राष्ट्र के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विकास में उल्लेखनीय भूमिका अदा की है। अरुण बजाज[9] का कहना है कि मारवाड़ी शब्द व्यावसायिक साहस एवं अध्यवसाय का प्रतीक है जो लोक कल्याण के नूतन प्रयासों के काण अन्य व्यावसायिक समुदायों में अग्रणी है। हरियाणा के मुख्यमंत्री चौधरी देवीलाल[10] की नजर में मारवाड़ी शब्द ''मेहनत, हिम्मत, आत्मविश्वास, उद्यम और जोखिम उठाने का प्रतीक है।'' मारवाड़ी शब्द केवल जातीय नाम नहीं, बल्कि देश की एक सामाजिक सांस्कृतिक इकाई का वाचक है। जिसका मूल स्थान भले ही मारवाड़ रहा हो लेकिन व्यवहार में जिसने सारे देश को अपना समझा तथाउसके सामाजिक आर्थिक विकास को नई गति दी।[11] इस प्रकार मारवाड़ी की पहचान आज भूगोल, भाषा तथा सांस्कृतिक विशेषताओं से ऊपर उठकर उसकी उपलब्धियों पर आधारित हो गई है।[12]

वैश्यों की सामाजिक परम्पराएं

राजस्थान में भी अन्य क्षेत्रों की तरह जाति–व्यवस्था का परम्परागत ढांचा प्रत्येक जाति की वंशोत्पत्ति और व्यवसाय के अनुसार कायम रहा। ये जातियां अपने शादी–विवाह, रीति–रिवाज, रहन–सहन तथा खान–पान संबंधी विभिन्न नियमों और उपनियमों का पालन परम्परागत तरीके से किया करती थीं राजस्थान की जातीय संरचना भी वर्णानुसार रही जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र का

अपना स्थान था। यहां हम केवल वैश्य जाति का ही उल्लेख करेंगे। राजस्थान के वैश्य सर्वाधिक चर्चित रहे हैं जिन्हें मध्य युग में बनिया कह कर पुकारा जाता था। यह शब्द संस्कृत के वणिक् शब्द का तद्भव है। राजस्थान की अर्थव्यवस्था में व्यापार का बहुत महत्व रहा है जिसमें वैश्यों की महत्वपूर्ण हिस्सेदारी थी। व्यावसायिक दृष्टि से इनका मुख्य व्यवसाय व्यापार, वाणिज्य तथा रुपयों का लेनदेन था जिसे साहूकारी कहा जाता था। वैश्य लोग थोक व्यापारी के रूप में वस्तुओं को बाहर से मंगवाने और बाहर भेजने का कार्य करते थे। इसके अलावा वस्तुओं का भंडारण और दलाली भी करते थे।

वैश्यों की विशेष सामाजिक उपयोगिता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि राजपूताना के राजाओं और सामंतों का प्रयास रहता था कि उनकी राज्य–सीमा में अधिक से अधिक वैश्य आकर बसें। उस समय किसी भी नगर के लिए उसमें बसे सेठों की संख्या महत्वपूर्ण थी क्योंकि उनसे प्राप्त व्यापारिक शुल्कों से राज्य की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती थी। इस कारण सेठ लोग नगर की उन्नति के मुख्य आधार माने जाते थे और राजा लोग उन्हें सम्मान के साथ अपने नगर में बसने का निमंत्रण देते थे।[13] इसके लिए वैश्यों को विशेष छूट और सुविधाएं प्रदान की जाती थी। देशी रजवाड़ों का यह स्थायी मनोभाव रहता था कि अच्छे व्यापारी किसी ठिकाणेदार की भूमि पर न रहकर सीधे राज्यों के अधिकारवाली भूमि में रहें। बीकानेर रियासत में कई प्रसिद्ध वैश्यों को निमंत्रण देकर बुलाया गया तथा उन्हें मकान और दुकानें बनाने के लिये मुफ्त जमीनें दी गईं। पंजाब, दिल्ली या जयपुर से व्यापार करने पर उनसे किसी तरह की राहदारी नहीं ली जाती थी। इसके अलावा यहां के वैश्यों को हैदराबाद के निजाम तक ने निमंत्रित किया था। तथा कौलनामा लिखा था–''सरकार कौल देती है कि तुम इत्मीनान से और पैंठ से आबाद हो जाओ और गल्ला, किराना, कपड़ा, वगैरह हर वस्तु जो मुमकिन हो सके, लाकर व्यापार करो और इस मुल्क को अपना घर बनाओ। हर तरह से सरकार तुम्हारी परवरिश करेगी। अल्लाह–ताला चाहेगा तो कोई तुम्हें बिलावजह तकलीफ नहीं देगा। अगर देगा तो सरकार तुम्हारी ताईद में अमल करेगी''।

मारवाड़ी व्यापारियों कर सुरक्षा के लिए भी परवाना जारी किया गया था जिसमें उल्लेखित था–''मारवाड़ी जाति और व्यापारी में से कोई शख्स सरकार द्वारा कैद नहीं किया जाएगा। अगर उनसे कोई कुसूर हो जाए तो हवाले पंचों के किया जाएगा और बिला दरियाफ़त कोई सजा न होगी और अगर कोई ऐसी शिकायत सरकार से हो तो उस पर कोई तवज्जुह नहीं दी जाएगी।'' आबाद होने के लिए मारवाड़ियों को नवाब ने भूमि भी प्रदान की थी। सेठ श्रीचंद रघुनाथदास को बेगम बाजार में 14 एकड़ भूमि दी थी और तराजू का टैक्स वसूल करने का अधिकार बख्शा गया। पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह के निमंत्रण पर कई मारवाड़ी वहां गए तोा उनका विशेष ध्यान रखा गया। राजपूताना की व्यावसायिक संस्कृति इस प्रकार बनी चुकी थी कि प्रत्येक शासक को राजस्व बढ़ाने के लिए वैश्यों का सहयोग आवश्यक लगा था। मुगलों के शासन काल में तो यह कहा जाने लगा कि 'पहले साह पीछे बादशाह'। और तो और, जब भी राजाओं या सामंतों में जायदाद का बंटवारा होता था तो उसमें वैष्य भी बांट लिए जाते थे। बीकानेर के महाराजा कर्णसिंह के विवाह के समय उनकी पत्नी के साथ आलमचन्द नाम वैश्य कर्मचारी के रूप में आया था। इस प्रकार तत्कालीन व्यवस्था में वैश्यों को राज का एक अहम अंग समझा जाता था जिनके कंधों पर राजकीय कोष की जिम्मेदारी होती थी।

व्यापारिक मार्ग

प्राचीनकाल से ही राजस्थान के लोगों का व्यापार की ओर झुकाव इसलिए हुआ कि यहां व्यवसाय उनके जीविकोपार्जन का साधन रहा था। मध्यकाल में चन्द्रावती, नरहड़, भीनमाल, औसियां, भीलवाड़ा, नागौर, पाली, मालपुरा, चूरू, नारायण और शेरगढ़ प्रमुख व्यापारिक केन्द्र थे जो कई व्यापारिक मार्गों से जुड़े हुए थे। इनमें भीलवाड़ा, चूरू राजगढ़, मालपुरा और पाली में उत्तरी भारत, काश्मीर, चीन, यूरोप तथा

अफ्रीका के माल का लेन–देन होता था[14] राजस्थान की भौगालिक स्थिति ही इस प्रकार की थी कि कई आंतरिक तथा बाह्य व्यापारिक मार्गों का जाल सम्पूर्ण राजस्थान में फैला हुआ था। राजस्थान के प्रमुख व्यापारिक केन्द्र आंतरिक व्यापारिक मार्गों से जुड़े हुए थे। इनमें जोधपुर से कोटा, नागौर से नोहर, राजगढ़ से पाली, सांभर से टौंक, फलौदी से पूगल, अजमेर से अनूपगढ़ और चिड़ावा से कोटा आदि के मार्ग प्रमुख थे। कुछ व्यापारिक केन्द्र तो इतने महत्वपूर्ण थे कि उनसे कई कस्बों को अलग–अलग व्यापारिक मार्ग जाते थे। जैसे कोटा से नागौर, शाहपुरा, किशनगढ़, जयपुर इसी तरह बीकानेर से रवाना होकर बनजारों के काफिले कोटा, जयपुर, जोधपुर, पाली, जैसलमेर, उदयपुर, अनूपगढ़, आदि व्यापारिक केन्द्रों पर अलग–अलग मार्गों से पहुंचते थे। जैसलमेर कई व्यापारिक मार्गों से जुड़ा हुआ था जिसमें चूरू, जयपुर, जोधपुर आदि कस्बे शामिल थे। सांभर से कई व्यापारिक मार्ग टौंक, कोटा, तथा रैवासा तक पहुंचते थे।

राजस्थान से कई ऐसे व्यापारिक मार्ग भी गुजरते थे जो बाहर के व्यापारिक केन्द्रों से जुड़े हुए थे। उस समय का सबसे महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग दिल्ली से पाली का था जो भिवानी, राजगढ़, रेणी चूरू, रतनगढ़, सुजानगढ़, नागौर और जोधपुर होता हुआ पाली पहुंचता था। दूसरा मार्ग मुल्तान से कोटा का था जो मुलतान, भावलपुर, पूगल, बीकानेर, चूरू, जयपुर, टौंक, बूंदी होता हुआ कोटा पहुंचता था। इसी प्रकार उज्जैन से कौटा, कोटा से गुजरात, आगरा से प्रतापगढ़, झांसी से कोटा, इन्दौर से जयपुर, छत्तरगढ़ से जयपुर, मिर्जापुर से कोटा, आगरा से उज्जैन, ग्वालियर से जोधपुर, सांभर से झांसी, जयपुर पूना, कोटा से छतरपुर, जोधपुर से अहमदाबाद और सूरत, जयपुर से सूरत, जोधपुर से काश्मीर, आगरा से अजमेर[15] मुलतान से बीकानेर, बीकानेर से दिल्ली, राजगढ़ से सिंध को कई मार्ग जाते थे। इनके अलावा कई ऐसे व्यापारिक मार्ग भी थे जो राजस्थान में होकर गुजरते थे। उज्जैन से ग्वालियर का मार्ग कोटा होकर गुजरता था। मालवा से लाहौर जाने के लिये कोटा, बूंदी, टौंक, जयपुर, सीकर होकर जाना पड़ता था। इंदौर से दिल्ली जाने वाले व्यापारी कोटा होकर जाते थे। आगरा से अमहदाबाद का व्यापारिक मार्ग अजमेर, पाली, सिरोही होकर गुजरता था। अकबरनामा में इस व्यापारिक मार्ग की कई बार चर्चा आई है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जब प्रवास शुरू हुआ तो अधिकतर लोग इसी मार्ग से ऊंटों पर होते हुए आगरा पहुंचते थे और वहां से मिर्जापुर।[16]

इस प्रकार राजस्थान के अधिकतर कस्बे व्यापारिक मार्गों से जुड़े हुए थे। इनसे कई प्रकार की वस्तुओं का आयात–निर्यात होता था। व्यापारिक मार्गों पर मुसाफिरों की सुविधा के लिए शेरशाह ने जगह–जगह कुएँ और सराएँ बनाई थीं। आगरा से अजमेर के मार्ग पर उसने कोस–मीनारें भी बनवायी थीं जिनके भग्नावशेष अब भी नजर आते हैं। इनके उपयोग पर सुरक्षा–शुल्क लिया जाता था। अंग्रेजी हुकुमत के बाद इन व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा नहीं रही तथा लूटपाट बढ़ने लगी जिसमें कई बार जागीरदार और सामंत भी शामिल हो जाते थे। सुजानगढ़ एजेंसी रिपोर्ट में वर्णित है कि लूटपाट करने वाले गिरोह का मुखिया अलग–अलग स्थानों पर अपने गुप्तचर रखता था जो इन व्यापारिक मार्गों से गुजरने वाले काफिलों की सूचना देते थे जिसके आधार पर उनको लूट लिया जाता था।[17] ऐसी परिस्थिति में अधिकांश बनजारों ने अपने काफिलों के साथ चारणों को रखना को रखना शुरू कर दिया। मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही राजस्थान में अराजकता फैली और मराठों तथा पिण्डारियों के आक्रमणों ने राजस्थान के व्यापारिक मार्गों को अरक्षित बना दिया।[18] कालान्तर में अंग्रेज सरकार ने राजपूत राजाओं पर दबाव डाला कि वे व्यापारियों के लुट जाने पर उनको मुआवजा दें। व्यापारिक मार्गों पर लूटपाट की घटनाएं होने और अंग्रेजी नियंत्रित क्षेत्रों में भारी चुंगी की व्यवस्था तथा नई रेलवे लाइनों के कारण ये व्यापारिक मार्ग धीरे–धीरे उजड़ने लगे थे। इससे राजस्थान के परम्परागत व्यवसाय का ढांचा चरमरा गया तथा यहां के व्यवसायी नए रोजगार–अवसरों की ख़ोज में ब्रिटिश–नियंत्रित क्षेत्रों की ओर आशाभरी निगाहों से देखने लगे।

वैश्यों के कार्य

इस प्रकार वैश्यों के कार्य–कलापों में समय तथा परिस्थिति के अनुसार बदलाव होता रहा। धार्मिक ग्रन्थों में वैश्य वर्ण के कर्तव्यों की विस्तृत व्याख्या मिलती है। मनुस्मृति से पूर्व अत्रि मुनि ने एक ग्रंथ की रचना की थी जो 'अत्रिस्मृति'[19] के नाम से विख्यात हुआ। इसमें उल्लेख है कि 'दनामध्ययनं वार्ता चजनं चेति वै विशः' अर्थात् दान देना, अध्ययन करना, व्यापार करना तथा यज्ञ करना वैश्य के प्रमुख कर्तव्य हैं। इन चारों कर्तव्यों को मनुस्मृति में बढ़ाकर सात कर दिया गया।[20] इनमें पशु–रक्षा, दान, यज्ञ, अध्ययन, वाणिज्य, ब्याज लेने एवं कृषि से संबंधित कार्यों को महत्ता दी गई। हारीत स्मृति[21] व मनुस्मृति में उल्लिखित सात कर्मों में से अध्ययन तथा यज्ञ करने के दो कर्तव्य कम कर दिए गए। गौतम धर्मसूत्र के अनुसार कृषि, वाणिज्य, पशुपालन और कुसीद वैश्यों के मुख्य कर्तव्य थे। गीता में कहा गया है– 'कृषि गौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्मस्वभावजम्' अर्थात् कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य वैश्यों के स्वाभाविक कर्म है।[22] कौटल्य ने भी अध्ययन, यजन, दान, कृषि, पशुपालन और वाणिज्य को वैश्यों के कर्म माना है। वैश्यों के इन्हीं कर्तव्यों के कारण इन्हें आगे चलकर सेठ, श्रेष्ठी[23] या महाजन के नाम से पुकारा जाने लगा।

वैश्यों ने धार्मिक ग्रंथों में उल्लेखित कर्मों के अलावा भी कई महत्वपूर्ण कार्य किए हैं जिसके कारण इनकी समाज में प्रतिष्ठा बढ़ी है। वैश्य वर्ग मे राजयोग भी रहा। उन्होंने राज्यों के प्रशासन को संभाला, सेनापति के रूप में युद्ध कर विजयश्री प्राप्त की। राजाओं ने कई बार वैश्यों को अपना मंत्री, सलाहकार अथवा दीवान नियुक्त किया। राजस्थान में तो यह कहावत प्रचलित थी–'और मंत्री सब कीजिये, एक कीजिये बाणियां। उरों बुलावे, मीठों बोले, करे मन का जाणियां'। अर्थात् अन्य जाति के लोगों को भले ही मंत्री बनाओ लेकिन एक बनिया मंत्री अवश्य होना चाहिए, क्योंकि वह मनमानी करने पर सबको मीठा बोलकर खुश कर सकता है। राजपूताना के अलावा दिल्ली दरबार तक में वैश्यों ने मंत्री पद का दायित्व संभाला था। अग्रवाल जाति के टोडरमल पहले शेरशाह के और बाद में अकबर के राजस्व–विभाग के प्रमुख रहे। हुमायूँ, अकबर तथा जहाँगीर के शासनकाल में भी वैश्य खजांची और मंत्री थे। सम्राट शाहजहाँ के दीवान राय इन्द्रमल थे। लाला राजाराम, राय पटनीमल और रामप्रताप भी मुगलों के सफल दीवान रहे। हैदराबाद के निजाम सलावतगंज बहादुर ने सेठ रघुनाथ दास को अपनी सल्तनत का दीवान बनाया था। इसी तरह मराठों और अंग्रेजों तक ने वैश्यों को महत्वपूर्ण प्रशासनिक दायित्व सौंपा। इसके संबंध में विस्तृत जानकारी पांचवे अध्याय में दी गई है।

धार्मिक ग्रंथों के अनुसार वैश्यों के जो कर्म निश्चित किए गए थे, उनमें धीरे–धीरे कमी आने लगी। छठी शताब्दी तक उनके जीविकोपार्जन का साधन पशुपालन, कृषि तथा व्यापार था। लेकिन बारहवीं शताब्दी के दौरान भारत पर विदेशी आक्रमण होने लगे जिससे वैश्य लोग कृषि एवं पशुपालन का परम्परागत कार्य छोड़कर सुरक्षित स्थानों की ओर प्रवास करने लगे। इससे व्यापार ही उनका एक मात्र कर्म रह गया। भारत में मुसलमानों के प्रवेश के साथ ही अरब तथा ईरान के व्यापारियों ने भारतीय व्यापार पर कब्जा कर लिया। इसके कारण वैश्यों का व्यवसाय चौपट होने लगा। ऐसे विकट समय में उनके पास दो ही विकल्प थे। या तो मुगलों के मोदी बनें या उनकी नौकरी करके जीविकोपार्जन करें। कुछ वैश्यों ने अकबर के समय में ही मोदी तथा राजकीय सेवा का कार्य स्वीकार कर लिया था। मुगल शासन के दौरान वैश्यों ने राज–प्रबंध में काफ़ी नाम कमाया। फिर अंग्रेजी राज में यूरोप के व्यापारियों के आगमन के कारण वैश्य निराश हो गए। भारत पर अधिकार होते ही अंग्रेजों ने व्यापार को भी अपने हाथ में लेने में तत्परता दिखाई और व्यापार पर उनका एकाधिकार हो गया। इंग्लैण्ड का निर्मित माल बेचने के लिए उन्हें एजेंटों की आवश्यकता थी। चूंकि वैश्य अब तक अपने महत्वपूर्ण कार्य खो चुके थे, इसलिए इस वर्ग ने परिस्थितियों से समझौता करते हुए अंग्रेजों का एजेंट और बेनियन बनना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार समृद्ध वैश्य अपना सब कुछ खोकर साधारण स्थिति में पहुँच गए।

प्रवसन के कारण, संघर्ष और प्रसार

किसी जाति या समुदाय के अपने मूल स्थान से उठकर दूसरे स्थान पर जा बसने के प्राकृतिक, सामाजिक या राजनैतिक हेतु होते हैं। ऐसे हेतु जब सहनशक्ति के बाहर हो जाते हैं तो जाति या समुदाय अपने को बनाए रखने तथा प्रगति की ओर अग्रसर होने के लिए नई दिशाओं की तलाश करते हैं। मारवाड़ियों के साथ भी ऐसा ही हुआ। राजस्थान की भौगोलिक परिस्थितियां अधिक विषम होने लगी थीं। सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आने लगा था तथा राजपूताना की राजनीति में अंग्रेज अधिक प्रभावी हो गए थे। उन्होंने जो व्यापारिक नीतियां अपनाईं उनका व्यापक प्रभाव मारवाड़ी व्यापारियों पर पड़ा। राजपूताना में वर्षा की अनियमितता तथा 1868–1870, 1877–78 तथा 1899–1900 के बीच पड़े भयंकर अकालों[24] की निरन्तरता से व्यापारिक गतिविधियों पर विपरीत प्रभाव पड़ा जैसा कि लिखा जा चुका है, उन्नीसवीं सदी में राजपूताना अशांति और अराजकता के दौर से गुजर रहा था। ऐसी हालत में सामंत लोग व्यापार की सुरक्षा करने के स्थान पर लूटमार करने लगे तथा अपनी बढ़ती आवश्यकताओं के लिए व्यापारियों पर भारी करारोपण कर उनका शोषण करने लगे थे। यही नहीं बल्कि व्यापारियों से कम दर पर रुपया उधार लेकर उसे वापिस न करना उनका स्वभाव बन गया था। सुरक्षा संबंधी समस्या को हल करने के लिए कई व्यापारियों ने राजाओं को प्रार्थना–पत्र दिए लेकिन परवाने जारी करने के सिवाय कोई प्रभावी व्यवस्था नहीं की गई। ऐसी परिस्थिति में जो समृद्ध व्यवसायी थे उन्होंने अपने ही सुरक्षाकर्मी रखने प्रारंभ कर दिए। लेकिन ऐसे व्यापारियों की संख्या नगण्य थी।

अंग्रेजी राज का कुप्रभाव

सन 1818 तक राजूताना की सभी रियासतों ने अंग्रेजों के साथ संधियां करलीं और उनकी सुरक्षा का भार अंग्रेजों पर आ गया। परिणामस्वरूप रियासती फौजों पर होने वाला व्यय कम हो गया।[25] इससे फौजों पर आधारित व्यापार चौपट हो गया। दूसरी ओर राजपूताना के मुख्य उत्पादन नमक, अफीम और कपास पर अंग्रेजों ने एकाधिकार कर लिया। अंग्रेजों की दूषित चुंगी नीति[26] के कारण राजस्थान के व्यापारियों को अंग्रेजी भू–भागों में माल भेजना अधिक मंहगा पड़ने लगा।[27] इन विकट परिस्थितियों में मारवाड़ियों के लिए आवश्यक हो गया था कि वे अपना व्यापार अंग्रेजों द्वारा संरक्षित व्यापारिक केन्द्रों में जाकर करें ताकि चुंगी के कारण माल अधिक महंगा न हो। भारत के विदेशी व्यापार पर भी अंग्रेजों का एकाधिपत्य हो गया और मारवाड़ी व्यापारी विदेशी व्यापार पर भी अंग्रेजों का एकाधिपत्य हो गया और मारवाड़ी व्यापारी विदेशी व्यापार से पूर्णतया विलग हो गए। सन् 1813 के चार्टर एक्ट ने इंग्लैण्ड के सभी व्यापारियों को भारत में व्यापार करने की स्वतंत्रता प्रदान की और अंग्रेज व्यापारियों ने बम्बई तथा कलकता में अपने कार्यालय स्थापित कर लिए। उन्हें इंग्लैण्ड में निर्मित माल को बेचने के लिये तथा भारत में कच्चा माल प्राप्त करने के लिये तथा भारत में कच्चा माल प्राप्त करने के लिये बड़ी संख्या मे एजेंटों की आवश्यकता थी। चूंकि उस समय तक राजपूताना के व्यापारियों की आमदनी के साधन समाप्त हो गए थे। इसलिए उन्हें इस प्रकार के अवसर भी आकर्षक लगे। इस दौरान मारवाड़ी महसूस करने लगे थे कि यदि नगद रुपया हो तो व्यापार 'देस' में करना ठीक है वरना 'परदेस' पलायन करना बेहतर है।[28]

अंग्रेजों ने राजपूताना के कई साहूकारों को ब्रिटिश भारत में बसने के लिए संरक्षण, सहयोग तथा सुविधाएं प्रदान करने के संबंध में कई रूक्के शर्तनामे, परवाने और तसल्लीनामें जारी किए। अजमेर के सुपरिन्टेडेंट फ्रांसिस विल्डर ने 22 जुलाई 1818 को चतुर्भुज पोदार को पत्र लिखकर उसे अजमेर में व्यवसाय करने के लिए निमंत्रित किया था। जार्ज रसल क्लार्क ने अपने पत्र 30 मई 1834 के द्वारा अम्बाला में दुकान खोलने पर मिर्जामल को सभी सुविधाओं का आश्वासन दिया था। इसी आशय के पत्र दिल्ली और लुधियाना के पोलिटीकल एजेंट से मिर्जामल को प्राप्त हुए थे। मिर्जामल ने दुकान खोलने के लिए अपने शर्तनामा के अनुसार सुविधाएं प्राप्त कीं। सर एडवर्ड कोलब्रुक ने 13 मार्च 1829 को चूरू

के आसकरण और जेतरूप सहित रामगढ़ के कई व्यापारियों को परवाना दिया जिसमें उन्हें कई स्थानों पर बिना रोक–टोक व्यापार करने की स्वतंत्रता दी गई। उन्हें यह आश्वासन भी दिया गया कि उनकी इच्छानुसार जयपुर का एजेंट हर प्रकार की सहायता करेगा। अंग्रेजों ने संबंधित रियासतों को हिदायतें दीं कि व्यापारियों के साथ किसी प्रकार की कोई कड़ाई नहीं बरती जाए।

ब्रिटिश सरकार ने इन व्यापारियों के ऋण–वसूली तथा उनके व्यापारिक काफ़िलों की सुरक्षा के लिए तत्कालीन राजाओं और जागीरदारों पर दबाव भी डाला। नगर श्री चूरू में उपलब्ध कप्तान मार्टिन बेड के आदेश–पत्र से विदित होता है कि उसने 1835 में पटियाला के धोकल सिंह और दयालसिंह के बकाया ऋण–वसूली में मिर्जामल की मदद की थी। बीकानेर रियासत पर 1872 में राज्य के व्यापारियों का करीबन चालीस लाख रुपया बकाया निकलता था जिसकी वसूली के लिए एजेंट कप्तनान तालबोट ने विशेष प्रयास कर ऋण वापिस करवाया। व्यापारिक मार्गों के अरक्षित हो जाने पर लूटमार की घटनाएं बढ़ने लगी थीं। अंग्रेज अधिकारी व्यापारियों की तत्कालीन राजाओं से क्षपिपूर्ति करवाते या उनका माल वापिस दिलाने में मदद करते थे। एक बार तो भारत के गवर्नर जनरल ने एक अंग्रेज कर्नल अब्राहम लाकेट को बीकानेर राज्य में होने वाली लूटमार की घटनाओं की जांच के लिए भेजा था। अंग्रेजों ने रियासत में प्रचलित राहदारी शुल्क को कम करवाने का भी प्रयास किया।[29] जब कभी रियासतों के राजाओं और व्यापारियों में मतभेद होते तो ब्रिटिश अधिकारी व्यापारियों का ही पक्ष तेले थे। इससे व्यापारियों को लगने लगा कि अंग्रेजी संरक्षण में व्यापार करना अधिक सुविधाजनक तथा सुरक्षित है। परिणामस्वरूप उनका पलायन ब्रिटिश भारत की ओर होने लगा। अंग्रेजों ने बैंकिंग कार्य में लगे व्यापारियों को अधिक प्रोत्साहन और सुविधाएं प्रदान कीं। उनके उधार रुपयों की वसूली सुरक्षित कर दी और रहन के लिए कृषि भूमि रखने की व्यवस्था कायम की ताकि हर हालत में उनके उधार दिए गए रुपये को वापिस वसूल किया जा सके। इसी तरह राजपूताना की तुलना में ब्रिटिश–नियंत्रित बंगाल में ब्याज दर अधिक कर दी गई।[30] इससे बैंकिंग का व्यवसाय करने वाले मारवाड़ी भारी संख्या में अंग्रेजी क्षेत्रों की ओर निष्क्रमण करने लगे।

अंग्रेजों ने अफीम, कपास, गन्ना, ऊन, नील, जूट, चाय और सोने चांदी के व्यवसाय को विकसित किया जिनमें लाभ की संभावनाएं अधिक प्रतीत हो रही थीं। इससे व्यापारियों का ध्यान अंग्रेजों की तरफ जाना स्वाभाविक था। रेल–मार्गों की स्थापना से मारवाड़ी व्यापारियों का पलायन और अधिक सरल हो गया। सन् 1860 में दिल्ली–कलकत्ता रेल–मार्ग चालू हो गया तथा उसके बाद 1874 से 1881 के दौरान राजस्थान में रेल लाइन की स्थापना और अधिक सहायक सिद्ध हुई। पहले केवल युवा पुरुष ही निष्क्रमण करते थे, लेकिन रेल सुविधा होने के बाद बच्चे, स्त्रियां व वृद्ध पुरुष भी प्रवास पर निकल पड़े। ब्रिटिश भारत में प्रवासित विभिन्न व्यापारियों ने जब अपना काम बढ़ाया तो उन्हें मदद के लिये और जनों की आवश्यकता महसूस हुई। इसके लिए उन्होंने स्वजाति के व्यापारियों को 'देस' से आमंत्रित किया। उनकी मान्यता रही–'पीसो हाथ को, भाई साथ को'। कई बार प्रवासी व्यापारी जब राजपूताना में वापिस आते तो उनके अर्जित धन तथा सम्मान को देखकर स्थानीय लोग बहुत प्रभावित[31] होते। तब उनमे भी निष्क्रमण की भावना प्रबल होने लगती। इस प्रकार राजपूताना की विशेष भौगोलिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों में परिवर्तन से मारवाड़ियों के प्रवास में तेजी आई।

परिस्थितियों से संघर्ष

आज मारवाड़ियों के जो विशाल औद्योगिक साम्राज्य तथा उनकी सम्पन्नता देखने को मिलती है उसके पीछे पूर्वजों के प्रवसन की संघर्षपूर्ण गाथा रही है। इस प्रवसन का इतिहास उनके साहस, धैर्य, परिश्रम और सहिष्णुता का परिचायक है जिसमें उनकी जीवन–गाथाएं काफी प्रेरणास्पद हैं। प्रवसन के प्रारंभिक काल में आने–जाने के साधन नहीं थे, मार्ग में खाने और ठहरने की व्यवस्था नहीं थी और नए स्थान की भाषा और संस्कृति से परिचय नहीं था। उस समय बालू रेत के सुनसान टीलों से ऊँटो के

काफिले ले जाना मौत को चुनौति देने के समान था। इन बीहड़ मार्गों पर धाड़ैतियों और चोर–डाकुओं से अक्सर मुकाबला होता था। ऊँट की पीठ पर महीनों चलना तथा धूप की तपिश व रेतीली हवाओं के थपेड़े खाना उनका स्वभाव बन गया था। घनश्यामदास बिड़ला ने प्रवास का वर्णन करते हुए लिखा है कि उन दिनों बम्बई की यात्रा बड़ी समस्या थी। सुना है दिल्ली से निकटतम रेलवे–स्टेशन उन दिनों अहमदाबाद या इन्दौर था पिलानी से ऊँट पर सफर करना काफी कष्टसाध्य था तथा ऐसी प्रवास यात्राएं समूह के साथ हुआ करती थीं जिन्हें 'सांगा' कहते थे। पिलानी से अहमदाबाद पहुँचने में शायद बीस रोज लग जाते थे।[32] इस प्रकार कदम–कदम पर मौत खड़ी थी लेकिन फिर भी साहसिक वैश्यों के प्रवसन में किसी प्रकार की कमी नहीं आई।

उस समय बंगाल पहुँचने के लिए लगातार कई माह तक ऊँटों पर, पैदल और नावों में यात्रा करनी पड़ती थी। रामेश्वर टांटिया लिखते हैं कि बंगाल आना आसान नहीं था। रास्ते में चोर, डाकू, बीहड़ जंगल, नदी–नाले, जंगली जानवर सभी तरह की कठिनाइयां थीं। सफर में महीनों लग जाते थे। यात्राएं पैदल होतीं या बैलगाड़ियों से। बिहार में अंग्रेजों के पैर जमने पर व्यापारी राजपूताना से मिर्जापुर तक पैदल जाते थे।[33] इस प्रवसन–काल के संघर्ष में कई मारवाड़ी मृत्यु का वरण कर चुके थे फिर भी पीछे से आने वालों के पैर नहीं लड़खड़ाते थे। उन दिनों असम का प्रवसन और अधिक कष्टसाध्य था। कई मारवाड़ी व्यापारी पिस्सू और मच्छरों से उत्पन्न होने वाली बीमारियों से मर खप गये थे।34 उस समय की मुसाफिरी दस पन्द्रह वर्ष की होती थी। कई लोग बीस–पच्चीस वर्ष बाद ही देश आकर परिवार वालों से मिलते थे। वर्षों तक देश में परिवार वालों को परिवार के मुखिया का समाचार नहीं मिलता था। कभी–कभार देस से जब कोई व्यापारी आता तो वह कुशल–क्षेम के समाचार सुनाता । उसके परिवार वालों का पत्र देता था। कई बार ऐसा होता था कि प्रवास के बाद किसी बीमारी से किसी की मृत्यु हो जाती लेकिन उसके घरवालों को वर्षों तक जानकारी नहीं होती थी।[35]

असम पहुंचना तो उस समय सर्वाधिक दुष्कर था। तीन महीने की थकादेने वाली यात्रा पैदल, ऊँट, ब्रह्पुत्र नदी के बहाव के विरूद्ध नावों में करनी पड़ती थी। असम के पूर्व राज्यपाल श्री प्रकाश ने एक बार कहा था– ''साहस व शौर्य के साथ मारवाड़ी भाई दुर्गम मार्गों तथा अगम्य पहाड़ियों को पार कर उन क्षेत्रों में जा पहुंचे तथा निर्भयता से बस गए। जहां शासकीय अधिकारी, जिनमें मैं भी शामिल था, सशस्त्र पुलिस तथा फौज के पहरे में जाने का साहस निर्भयतापूर्वक नहीं कर सकते, उनमें मारवाड़ी भाईयों को स्वच्छंद तथा निर्भयता–पूर्वक विचरते देख दांतों तले अंगुली दबा लेनी पड़ती थी। और तो और, मारवाड़ी भाई नागाओं तक में घुलमिल गए जिनको अत्यन्त क्रूर, निर्दयी और हिंसक कहा जाता है।'' नागाओं ने मारवाड़ियों को आमंत्रित किया, जमींनें दीं तथा सामान जुटाकर दुकानें बना दीं। यह उनकी मिलनसारिता और सेवाभाव का ही परिणाम था। असम में मारवाड़ियों की प्रारंभिक रहन–सहन की व्यवस्था बहुत कष्टकारी थी। रात को घुप्प अंधेरे में जंगलों में पड़े इन लोगों के पास प्रकाश के नाम पर मिट्टी के तेल की ढिबरी होती और आवास की जगह टूटा–फूटा मकान जिसे पर्दे लगाकर दो–तीन कमरों का रूप दे दिया जाता। बाहर की सर्दी के फर्राटे सीधे अन्दर जाते। वर्षा से टपकती छत और कच्चे फर्श पर बिछे बोरों के ऊपर नींद लेने की असफल कोशिश करते। कभी–कभार नींद आ भी जाती थी तो मच्छर पीछा नहीं छोड़ते। सुबह फिर वही कठोर मेहनत तथा खाने के नाम पर सूखी रोटी। पानी के साथ जैसे–तैसे रोटी के कौरों को निगलकर भी उन्होंने हार नहीं मानी। ऐसी विपरीत अवस्था में भी इन्होंने असम को छोड़ा नहीं बल्कि धैर्य, कठोर परिश्रम और साहस के सथ अपने व्यवसाय को जमाने में लगे रहे।[36]

कलकत्ता की हालत तो और अधिक कष्टदायी थी। एक छोटी–सी कोठरी में पूरा परिवार गुजारा करता। उसी में रहना, रसोई पकाना और रात को एक–दूसरे पर गिर–पड़ कर सो जाना। अगर पुत्र का विवाह हो जाता तो कमरे में पर्दा डालकर एक तरफ मां–बाप बच्चों को लेकर सोते, दूसरी तरफ पुत्र और उसकी पत्नी। इसी तरह गद्दियों में जहां केवल चार–पांच व्यक्तियों के लिए जगह

होती, वहां रहते आठ–दस। कभी–कभार इससे भी ज्यादा हो जाते। इस वजह से सुबह शौच के लिए पाखानों के सामने लंबी कतारें लगतीं। खड़े–खड़े गंदगी और बदबू से सिर भन्ना उठता।[37] ऐसी हालत में मलेरिया, काला ज्वर और पेचिश का प्रकोप होता जिससे आए दिन कई व्यापारी इसका शिकार हो जाते थे।

रेलों के विकास के बाद इन कष्टकारी यात्राओं में कुछ समय कम लगने लगा लेकिन यात्रा उतनी ही जोखिम भरी होती थी। रामेश्वर लाल टांटिया लिखते हैं कि उन दिनों तीसरे दर्जे की यात्रा क्या थी और कैसी थी। ''इसके बारे में केवल इतना कहा जा सकता है कि यह जीवट और कष्ट–सहिष्णुता का काम था। भेड़–बकरियों की तरह लोग भरे रहते। ट्रेनें बहुत कम थीं। बैठने के लिए डिब्बों में एक सिरे से दूसरे की तरफ संकरी बैचों की तीन कतारें। बीच वाली कतार में एक दूसरे की तरफ पीठ कर लोग बैठते। ऊपर सामान रखने के लिए बर्थ भी संकरी होती थी। पंखों की व्यवस्था थी ही नहीं, यात्री पसीने से तर हो जाते। गर्द, गंदगी और दुर्गन्ध से भरा लंबा सफर। कंपार्टमेन्ट के दरवाजे संकरे और बाहर खुलने वाले थे। डर बना रहता कि कहीं खुल न जाये और भीतर बैठा यात्री बाहर गिर न पड़े। टूटी खिड़कियों की राह गर्मी में लू और बरसात में पानी की बौछारें भीतर आतीं। पाखानों में नल नहीं थे। उस समय रिजर्वेशन या आरक्षण की बात नहीं सोची जा सकती थी। स्टेशन पर कुली चार आने तेला। मुसाफिर को उकडू बैठाता और खिड़की की राह डिब्बे के अन्दर ठेल देता। किसी को चोट लगे, न लगे सब विधि के विधान पर निर्भर था। अन्दर के मुसाफिर डिब्बे का दरवाजा खोलते नहीं थे। बाहर आने–जाने के लिए खिड़की ही थी खुदा की राह। इस मार्ग से भीतर पहुंच सके तो भाग्यशाली, वरना स्टेशन पर बैठे–बैठे बारह–चौबीस घंटे बाद फिर अगली गाड़ी के लिए किस्मत आजमाई जाए।''[38] ऐसी विकट परिस्थितियों में आज के मारवाड़ियों के पूर्वजों ने प्रवसन किया अनेक कष्ट भोगे, आत्म–बलिदान किया, परिश्रम से धन अर्जित किया तथा उसे सत्कार्यों में लगाया। मारवाड़ी बुजुर्गों की यह मान्यता थी कि 'मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम्' उन्होंने इसको व्यावहारिक रूप में क्रियान्वित कर दिखाया तथा अपनी कार्य–साधना में कभी सुख–दुख की परवाह नहीं की। यहां तक कि बिना मृत्यु की परवाह किए राष्ट्र के विकास को नई दिशाएं दीं।

जैसा कि वर्णन किया जा चुका है, राजपूताना के व्यापारी पन्द्रहवीं शताब्दी से पहले ही अल्पकालिक प्रवसन करते रहे हैं। बंगाल से मारवाड़ी व्यापारियों का संबंध 1564 से माना जाता है।[39] सोलहवीं सदी के प्रारंभ में भी मारवाड़ी व्यापारियों के आगमन के संकेत मिलते हैं जो राजसत्ता का सहारा लेकर व्यापार में प्रमुख बन जाते हैं।40 सत्रहवीं सदी में मारवाड़ के कई व्यापारी बंगाल और बिहार की ओर आजीविका की खोज में निकलते हैं। इनें नागौर के जगत् सेठों के पूर्वज भी थे जो बंगाल के 'किंग मेकर' और बैंकर के रूप में प्रसिद्ध हुए।41 दिल्ली की ओर मारवाड़ियों ने 1803 से ही जाना शुरू कर दिया था। मध्य भारत में 1780 के पहले ही कुछ मारवाड़ी फर्में अपना बैंकिंग व्यवसाय करने लगीं थीं। इनके संबंध में अंग्रेज यात्री जान मेल्कोम ने लिखा है कि मध्य भारत के करीब सभी साहूकार, सर्राफ तथा अधिकतर बनिये या तो गुजरात के हैं या मारवाड़ के, ये यहां के बहुत पुराने निवासी नहीं हैं।[42] लेकिन 1824 की जनगणना के अनुसार इनकी संख्या उन्नीस हजार थी। बर्मा में भी मारवाड़ी चावल और लकड़ी का व्यापार करने लगे थे जिनमें चिमनलाल गनेड़ीवाल और बागलाओं की फर्में प्रसिद्ध थीं। कलकत्ता के सौजीराम हरदयाल ने 1850 में अपना शाखा कार्यालय चीन में खोला था। उसकी अन्य शाखाएं कलकत्ता, मिर्जापुर और फर्रूखाबाद में थीं।

बम्बई की तरफ मारवाड़ियों का प्रवसन 1800 के बाद प्रारंभ होता है जिसमें 1846 तक काफी तेजी आई। 1911 में इनकी जनसंख्या साठ हजार हो जाती है।[43] कलकत्ता में मारवाड़ी प्रारम्भ से ही व्यापार के लिए जाते रहे हैं। 1813 में जब अंग्रेज व्यापारियों को भारत में स्वतन्त्र इनकी संख्या में 1830 के बाद वृद्धि होने लगती है। 1860 में दिल्ली कलकत्ता रेल–सेवा शुरू होने के बाद प्रवसन में और तेजी आई। 1911 तक कलकत्ता में मारवाड़ियों की आबादी पन्द्रह हजार तक पहुंच गई। 1921 की

जनगणना में उल्लेख मिलता है कि हाल के वर्षों में राजपूताना से प्रवासियों का आना बहुत अधिक बढ़ गया है। इससे वे कलकत्ता के व्यापार पर हावी हो गए हैं।[44]

अठ्ठारहवीं सदी तक राजपूताना के अनेक व्यावसायियों ने राज्य के बाहर अपना व्यवसाय विकसित कर लिया। खुर्जा, हापुड़, हाथरस, फिरोजाबाद तथा मिर्जापुर के बाजारों में 1780 से 1820 के बीच मारवाड़ी अग्रवाल प्रमुख हो गए। बंगाल की सीमा पर स्थित गोवालपाड़ा में 1818 तक मारवाड़ी व्यापार में अग्रणी हो गए। बंगाल हरकारू ने 1834 में लिखा था–''सिंध और सतलज नदी के पार एक ही जाति के लोग यूरोपीय बस्तियों से नियमित व्यापार करते हैं। ये जोधपुर और शेखावाटी के बनिये हैं जिन्हें मारवाड़ियों के नाम से जाना जाता है।'' चुरू के रूक्मानन्द ने कलकत्ता में 1823 में बैंकिंग फर्म स्थापित की थी। सन् 1833 में मिर्जामल पोदार की फर्म की बम्बई शाखा इंग्लैण्ड को शाल, मसाले और हाथी दांत निर्यात करने लगी।[45] चूरू के सोजीराम ने मिर्जापुर व फर्रूखाबाद में व्यवसाय प्रारंभ कर दिया तथा बीकानेर के बंशीलाल डागा ने नागपुर के बारे में जेनकिन्स ने 1823 में ईस्ट इंडिया कम्पनी को लिखा था कि यहां के अधिकांश साहूकार मारवाड़ी हैं। कानपुर जाने वाले व्यापारियों में मंडावा के नेवटिया तथा सेवाराम रामरिखदास थे जो 1857 के बाद गए थे।

सन् 1850 तक प्रमुख मारवाड़ी फर्मों ने सम्पूर्ण भारत में अपनी शाखाएं स्थापित कर ली थीं। इनमें सोजीराम हरदयाल, ताराचन्द, घनश्यामदास, सेवाराम खुशहालचन्द, बंसीलाल अबीरचन्द डागा की फर्में प्रमुख थीं। असम की ओर 1818 में चूरू के राय हरबिलास अग्रवाल के पिता गए।[46] इसके बाद 1860–80 के बीच असम में बड़ी संख्या में मारवाड़ी पहुंचे जो डिब्रूगढ़ और दुर्गम पहाड़ी क्षेत्रों में फैल गए जहां यातायात का कोई साधन उपलब्ध नहीं था। तभी तो कहा गया कि ''जहां न पहुंचे बैलगाड़ी वहां पहुंचे मारवाड़ी''। 1881 में हुई जनगणना के अनुसार असम में दो हजार चार सौ ऐसे व्यापारी थे जिनका जन्म राजपूताना में हुआ था। इनकी संख्या 1931 तक बढ़कर बाईस हजार हो गई।[47] असम के प्रथम मुख्यमंत्री गोपीनाथ बारदोलोई के शब्दों में ''ब्रह्मपुत्र के तट पर आबाद गौहाटी, नौगांव, जोरहाट, धूबड़ी, गवालपाड़ा, शिवसागर, डिब्रूगढ़, लखीमपुर आदि नगरों को वर्तमान रूप देने का श्रेय उन मारवाड़ियों को है जो पिछली सदी से असम में आकर बसे हैं। इसी प्रकार शिलांग, डिमापुर, कोहिमा, तिनसुकिया, डिगबोई और इम्फाल को आबाद तथा समृद्ध बनाने का श्रेय भी राजस्थान से आकर बसने वाले साहसी मारवाड़ियों को है।''[48] मद्रास की ओर मारवाड़ी लोग 1860 से 1880 के बीच गए।

हैदराबाद में 1840 से पहले ही ओसवाल और माहेश्वरी परिवारों के होने के प्रमाण मिलते हैं। 1873 में तो राज्य के अधिकतर बैंकर मारवाड़ी थे।[49] सन् 1911 में हुई जनगणना के अनुसार हैदराबाद में चौदह हजार ऐसे प्रवासी थे जिनका संबंध राजपूताना से था। बिहार में मारवाड़ी 1810 से पहले ही पहुंच गए थे। सन् 1891 में इनकी संख्या चार हजार थी। इनमें अधिकतर शेखावटी के अग्रवाल थे।

उन्नीसवीं सदी उत्तरार्द्ध में मारवाड़ी व्यापारियों का लगातार निष्क्रमण प्रारंभ हो गया था। ब्रिटिश भारत में नए व्यापारिक अवसरों का लाभ उठाने के लिए हजारों की संख्या में मारवाड़ी व्यापारी महाराष्ट्र, मध्य भारत और मालवा के खेती वाले क्षेत्रों की ओर जाने लगे। 1880 तक मारवाड़ी व्यापारी रांची के आसपास के आदिवासी क्षेत्रों में फैल गए। रेवेन्स्टाइन ने लिखा है कि यातायात के साधनों तथा व्यापार के अवसरों की दृष्टि से प्रवासियों की संख्या में बढ़ोत्तरी होती है।[50] सन् 1860 में दिल्ली–कलकत्ता के बीच रेल–सेवा शुरू होते ही मारवाड़ियों के निष्क्रमण में और अधिक तेजी आई। सन् 1881 से 1902 के मध्य जोधपुर बीकानेर रेलवे का निर्माण हो गया। आजादी के पहले की जनगणना की तालिकाएं स्पष्ट करती हैं कि 1860 से 1900 के दौरान मारवाड़ी व्यापारियों ने सर्वाधिक निष्क्रमण किया था।

इस संबंध में डी. आर. गाडगिल लिखते हैं कि अन्य व्यावसायिक जातियों की तुलना में मारवाड़ी सारे देश में फैल गए। मारवाड़ी व्यापारियों के इस देशव्यापी अभियान से कई भागों में मारवाड़ी नगर, बस्तियां और बाजार बस गए। प्रवासी व्यापारियों के इस फैलाव के संबंध में असम के पूर्व मुख्यमंत्री

गोपीनाथ बरदोलोई ने कहा, ''मारवाड़ी समाज ने असम में आकर उसको आबाद और समृद्ध बनाने में जिस अध्यवसाय से काम लिया है, उसकी मैं सदा ही सराहना करता हूँ। मारवाड़ी समाज ने असम और असम की जनता की बहुत भलाई की है। यहाँ जो बड़ी–बड़ी बस्तियां और नगर आबाद हैं, उन सबका श्रेय अधिकतर उन्हीं को है। यहां के व्यापार–व्यवसाय और उद्योग धन्धे भी अधिकतर उन्हीं की देन हैं। किसी भी बड़ी बस्ती या नगर में चले जाइए, उसके मध्य या मुख्य स्थान में मारवाड़ी भाई की दुकान या मकान मिलेगा। इससे स्पष्ट है कि उस बड़ी बस्ती या नगर में पहली दुकान या मकान किसी मारवाड़ी भाई ने बनाया और उसके चारों ओर वह बस्ती अथवा नगर बसता चला गया।''[51] मारवाड़ी व्यापारी जहां कहीं भी गए वहां नई बस्तियां आबाद होने में अधिक समय नहीं लगा। फिर इन्हीं बस्तियों के चारों ओर नया गांव या नगर बसता चला गया। कटक, बालेश्वर, सम्बलपुर, झांडसुगड़ा, बरगढ़ आदि नगरों के मुख्य बाजार ओर दुकानें मारवाड़ी व्यापारियों के बसने के बाद ही बनीं। सन् 1986 में अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी सम्मेलन की स्वर्ण जयंती का उद्घाटन करते हुए वर्ष पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह ने कहा था– ''मारवाड़ी भाई जिस प्रदेश में गए, वहीं के हो गए।'' कलकत्ता का बड़ा बाजार, मद्रास की मारवाड़ी बस्ती, बम्बई का कालादेवी बाजार, हैदराबाद का बेगम बाजार, अमृतसर की मारवाड़ी बस्तियां तथा उत्तरप्रदेश के हापुड़ नगर का मारवाड़ी मुहल्ला इस बात के प्रमाण हैं कि मारवाड़ियों के वहां बसने के बाद ही वहां का अर्थचक्र तेजी से घूमने लगा, तथा इससे राष्ट्र के संतुलित विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ।

प्रभावशाली व्यापारी वर्ग

राजपूताना के राजाओं की सदैव यह मनोवृत्ति रही कि संपन्न वैश्यों को आमंत्रित कर राज्य की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ किया जाए। जैसाकि लिखा जा चुका है, इसके लिए व्यापारियों को विशेष प्रकार की छूट तथा सुविधाएं प्रदान की जाती थीं। यद्यपित व्यापारी वर्ग की सामाजिक स्थिति उस समय भी उच्च थी, लेकिन कालान्तर में राजस्थान की विशेष भौगोलिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के कारण व्यापारियों का निष्क्रमण होने लगा था। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक उन्होंने ब्रिटिश भारत में अपने व्यापारिक चातुर्य के बल पर काफी धन–सम्पदा अर्जित की थी। बीसवीं सदी के उदय होते–होते व्यापारिक वर्ग एक प्रभावशाली वर्ग के रूप में राजपूताना में छा गया। अंग्रेजों ने इन व्यापारियों को अधिक प्रभावशाली बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। इनके व्यापार सुरक्षा के लिए संरक्षण प्रदान किया।[52] इनके बकाया ऋणों के लिए राजाओं पर दबाव डाला[53] तथा इनको कई उपाधियों[54] से सम्मानित किया। इसके अलावा ब्रिटिश सरकार ने इन्हें कई विशेष अधिकार भी प्रदान किए। कस्तूरचन्द डागा को अदालतों में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने से मुक्त कर दिया था।[55] बंसीलाल अबीरचन्द फर्म को मध्यप्रदेश, पंजाब और बंबई राज्य की सरकारों से उस फर्म की बहियों को बिना मंगाए ही मुकदमों का फैसला करने का सम्मान मिला हुआ था। चांदमल ढ़ढ्ढा को 1877 में दिल्ली दरबार में आमंत्रित कर प्रतिष्ठित जनों में उनके बैठने की व्यवस्था की गई थी। इसी तरह 1911 में केसरीसिंह बापना को दिल्ली दरबार में बैठने के लिए सम्मानित स्थान दिया गया था। कई बार तो ब्रिटिश सरकार ने उन्हें राजपूताना के राजाओं से भी अधिक महत्व दिया। सन् 1911 में आयोजित दिल्ली दरबार में बीकानेर के कस्तूरचन्द डागा को महाराजा गंगासिंह से अधिक सम्मानित कुर्सी दी गई थी। लेकिन कस्तूरचन्द डागा ने अपने प्रभाव का प्रयोग करते हुए महाराजा गंगासिंह को अपने से अधिक सम्मानित स्थान पर बैठने की व्यवस्था की थी।

राजा तथा जागीरदार अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस नवोदित प्रभावी वर्ग पर निर्भर हो गए। महाराजा ग्वालियर ने प्रसिद्ध फर्म हरमुखराय दुलीचन्द से तीस लाख रुपए का ऋण लिया। जयपुर महाराजा ने गोकुलदास और गोपालदास से तीन लाख नब्बे हजार रुपये, लक्ष्मीचन्द राधाकिशन से एक लाख तीस हजार रुपए तथा जगन्नाथमल से पिचहत्तर हजार रुपए के ऋण लिए।

खेतड़ी के राजा फतहसिंह ने मंडावा के नाथूराम सर्राफ से चार लाख रुपए बतौर कर्ज लिए। इसी तरह उदयपुर रियासत ने सेठ रामरतन से तीन लाख बत्तीस हजार दो सौ दस रुपए का ऋण लिया। शाह श्योनाथ प्रताप से छब्बीस हजार छह सौ चौंतीस रुपए तथा गंभीरमल मेहता से आठ हजार दो सौ पिचानवे रुपए ऋण लिया। जोधपुर राज्य में पानी के टांकों के निर्माण के लिए सेठ रामगोपाल मालानी ने तीन लाख रुपए जमा किए। इसी तरह जोधपुर रेल–लाईन के निर्माण के लिए भी प्रवासी व्यापारियों ने आर्थिक सहयो दिया। बीकानेर के महाराजा गंगासिंह को राज्य में रेलवे और नहर निर्माण के लिए व्यापारियों ने 1924 में अट्ठारह लाख छियानवे हजार आठ सौ रुपए का ऋण दिया तथा 1929 में फिर पच्चीस लाख तिरेसठ हजार रुपए के ऋण बाण्ड खरीदकर राज्य की मदद की। रेलवे के विस्तार के लिए अकेले कस्तूरचन्द डागा ने तीन लाख छियालिस हजार रुपए का ऋण दिया।[56] जयपुर रियासत को सांगानेर से सवाई माधोपुर तक की रेलवे लाईन निर्माण के लिए रामकृष्ण डालमियां ने सत्तर हजार रुपए, रामचन्द्र गोयनका ने पचास हजार रुपए, प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका ने पचास हजार रुपए तथा आनन्दीलाल पोदार ने चालीस हजार रुपए दिए। इसी तरह अन्य रियासतों में भी व्यापारियों ने जनकल्याणकारी कार्यों में सहयोग दिया। यही नहीं, बल्कि मारवाड़ियों ने कुओं, धर्मशालाओं, शैक्षणिक संस्थाओं, अस्पतालों, तथा गोशालाओं के निर्माण में भी गहरी रुचि ली। रजवाड़ों के विभिन्न कोशों में पड़े निष्क्रिय धन को व्यापार में लगाकर रियासत की आमदनी को बढ़ाने में भी सहयोग दिया।[57] उदयपुर राज्य के बलवन्तसिंह कोठारी को स्टेट बैंक का मुखिया बनाया गया तथा जयपुर रियासत में सागरमल गोलेछा को स्टेट बैंक का कोषाधिकारी नियुक्त किया गया।

राजाओं को ऋण देने और जनकल्याण में रुचि रखने वाले व्यापारियों को रियासतों की ओर से सामाजिक मान्यता मिलने लगी। राजाओं ने प्रतिष्ठित व्यापारियों के यहां विशेष अवसरों[58] पर आना–जाना शुरू कर दिया। राजा लोग त्यौहारों के अवसरों पर कई व्यापारियों के घर जाते थे जिसमें चांदमल ढ़ढ्ढा, कस्तूरचन्द डागा, बहादुरमल बापना, प्रेमचन्द बापना, जोरावरसिंह सुराना और प्रतापमल मेहता शामिल थे। उस समय राजाओं का व्यापारियों के घर जाना सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता था। रियासतों ने मारवाड़ी व्यापारियों को राजदरबार में राजा के समीप बैठने का अधिकार भी प्रदान किया।[59] कई प्रमुख व्यापारियों को राज्य ने विशिष्ट अधिकार दिए। चूरू के मिर्जामल फोतेदार को महाराजा सूरतसिंह ने अपने इकरारनामें में यह छूट दे रखी थी कि अगर वह खून जैसे तीन गंभीर अपराध भी कर देगा तो उसको अथवा उसके उत्तराधिकारियों को रियासत की ओर से कोइ दण्ड नहीं दिया जाएगा। उसको यह अधिकार भी मिला हुआ था कि अगर उसकी हवेली में रियासत का कोई अपराधी शरण प्राप्त कर लेगा तो उसे पकड़ा नहीं जाएगा।[60] बीकानेर के महाराजा जब भी चूरू आते थे तो सेठ गुरूमुखराय पोदार की हवेली के सामने हाथी रोककर उसका सम्मान बढ़ाते थे।[61] व्यापारियों को अपने नौकरों तथा गुमाश्तों से निबटने के लिए दीवानी और फौजदारी अधिकार दिए गए। उदयमल ढ़ढ्ढा और मिर्जामल फोतेदार को ऐसे अधिकार प्राप्त थे। बीकानेर के अनेक व्यापारियों के लिए दीवानी और फौजदारी के मामलों में न्यायालय में उपस्थित होना जरूरी नहीं था। रियासत के कुछ व्यापारियों को जकात शुल्क में छूट मिली हुई थी।[62]